

गुरु और शिष्य

(परम पूज्य स्वामी शंकरानन्द)

गुरु

हितकारी उपदेश देने वाला पुरुष गुरु कहलाता है। हित दो प्रकार का हो सकता है- लौकिक हित और पारमार्थिक हित। इनमें कोई भी हित करने वाला व्यक्ति गुरु ही है। फिर भी लौकिक हित की अपेक्षा पारमार्थिक हित श्रेष्ठ है। श्रेष्ठ हित करने वाला गुरु ही महान है। वह संसार के दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति कर परमानन्द प्राप्त करा देता है। वह स्वयं जीवन्मुक्त है और अन्य अधिकारी पुरुषों को भी मुक्ति के द्वार पर पहुँचा देता है।

वर्तमान युग में अनेक ठगों ने अपने को आध्यात्मिक गुरु घोषित कर रखा है।

स्वयं अज्ञानी और भौतिक जाल में फंसे हैं, किन्तु अन्य लोगों को झूठे आश्वासन देकर उनका धन हरण करते हैं। ऐसे तथाकथित गुरुओं से सावधान रहने की आवश्यकता है। वस्तुतः बाजार में माँग के अनुसार पूर्ति भी होने लगती है। लोग चाहते हैं कि स्वयं कोई साधना या प्रयत्न न करना पड़े, कोई दूसरा व्यक्ति उन्हें शक्तिपात या शुभ आशीर्वाद के द्वारा स्वर्ग पहुँचा दे या संसार-बंधन से मुक्त कर दे। ऐसा होना सम्भव नहीं है, किन्तु उन्हें ऐसे गुरु मिल जाते हैं और चमत्कार दिखा कर उन्हें अपने चंगुल में फाँस लेते हैं। किसी न किसी बहाने वे उनका धन हरण करते हैं, किन्तु शोक हरण नहीं कर पाते।

सद्गुरु तो स्वयं तृप्त और सन्तुष्ट होता है। वह किसी से कुछ नहीं चाहता।

यदि कोई शिष्य कृतज्ञतावश उसे धन देता है तो वह उसे समाज-सेवा के कार्य में ही लगा देता है। वह न किसी पर निर्भर रहता है और न कुछ पाने अथवा कहीं आने-जाने की इच्छा रखता है। उसका शरीर शेष प्रारब्ध के अनुसार चलता है और वह उसमें कमल-पत्र के समान रहता है।

शिष्य

कोई पुरुष शिष्य तब है जब वह गुरु भक्त हो। गुरु की सेवा करे, उसका उपदेश ध्यान से सुने और उसके बताये हुये मार्ग पर चले, तभी वह शिष्य है। शास्त्र का कथन है कि शिष्य अपने गुरु को भगवत् स्वरूप ही मानें। गुरु-भक्ति से ही ईश्वर भक्ति प्राप्त होती है। शास्त्रों का गहन तात्पर्य भी गुरु-कृपा से प्रकट होता है।

गुरु और शिष्य में जब हृदय से आन्तरिक तालमेल होता है तब गुरु का ज्ञान शिष्य के हृदय में अवतरित होता है। और शिष्य भी गुरु के समान महान हो जाता है। गुरु को शिष्य का धन नहीं, वरन् उसकी श्रद्धा चाहिए। गुरुवचन में श्रद्धा रखने वाले शिष्य ही अध्यात्म-पथ पर आगे बढ़ पाते हैं। अपने स्वतंत्र प्रयास से आध्यात्मिक सफलता चाहने वाले पुरुषों को बहुत दिन भटकना पड़ता है और अपनी शक्ति नष्ट करनी पड़ती है।

गुरु को श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ और कृपालु होना चाहिए और शिष्य को विवेक आदि साधन-सम्पन्न हो कर गुरु की शरण में रहना चाहिए। दोनों ओर से ऐसा संयोग होने पर गुरुशिष्य की ज्ञान परम्परा चलती है। अपने शास्त्रों में राजा जनक आदि

अनेक गुरु भक्तों की कथायें आती हैं। उन्हें
देखना चाहिए।

(मणिरत्नमाला से)
